

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अष्टांगयोग की उपयोगिता: एक अध्ययन

Ram Prakash^{1*} Dr. Monika Rani²

¹ Research Scholar, Department of Yoga, Himalayan Garhwal University, Uttarakhand

² Assistant Professor, Department of Yoga, Himalayan Garhwal University, Uttarakhand

शोध सार – व्यक्तित्व शब्द सामान्यतः विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जैसे कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक ढाँचे, स्वभाव एवं व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्तित्व का विभाजन किया है। व्यक्तित्व एक ऐसा विषय है जिसमें अनन्त दृष्टिकोण हो सकते हैं। जिसके अन्तर्गत विशिष्ट गुणों, व्यवहार आदि का समन्वय निहित है। व्यक्तित्व का कोई एक विशिष्ट व स्थायी रूप नहीं हो सकता, क्योंकि यह निरन्तर परिवर्तनशील एवं क्रियाशील रहता है। जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य जगत् के समायोजन से है। बिना बाह्य समायोजन से व्यक्तित्व का ज्ञान असम्भव है। व्यक्तित्व विकास का एक व्यवस्थित रूप दैहिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा दैविक गुणों का समन्वय है। योग में चित्त के आधार पर व्यक्तित्व का विभाजन प्राप्त होता है। जो मुख्यतः पाँच भागों विक्षिप्त, मूढ़ विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्धावस्था में विभक्त है।

योगदर्शन में व्यक्तित्व विकास के अन्तर्गत विभिन्न योग प्रणालियों, चित्त का स्वरूप व चित्त वृत्तियों को स्पष्ट किया गया है। वही श्रीमद्भगवद्गीता में इसे राजयोग की संज्ञा दी गई है। भगवान् श्री कृष्ण और पतंजलि ऋषि ने योग के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अष्टांगयोग या राजयोग को प्रमुखमार्ग माना है। जिसे दो भागों में विभाजित किया गया है—1. बहिरंग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम और 2. अन्तरंग-प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। योग के इन अंगों के निरन्तर अभ्यास से साधक बाह्य एवं आन्तरिक अभिव्यक्ति की सिद्धि करते हुए, मन को नियन्त्रित करके अजने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर परम लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

-----X-----

प्रस्तावना

योग भारतीय संस्कृति का मूल धरोहर है जिसके ज्ञान में जीवन दर्शन का संपूर्ण रहस्य छिपा हुआ है जिसके अंगीकरण करने से जीवन उत्कर्ष एवं सुखमय होकर लक्ष्य प्राप्ति में सफलता प्राप्त करता है, क्योंकि शास्त्रों में कथन है कि "सफल वही व्यक्ति होता है जो शरीर से स्वस्थ हो, निरोग हो एवं मन के स्तर पर संयत, शांत व संतुलित हो। इसलिए कहा जाता है कि - योग जीवन जीने की कला सिखाता है।"

आदि काल से लेकर आधुनिक समय तक तथा आने वाले समय में भी मनुष्य के व्यक्तित्व विकास के लिए दो मार्ग मौजूद होंगे, चाहे वह उन्हें स्वीकार करें अथवा न करें। प्रथम उत्थान आध्यात्मिक और द्वितीय लौकिक भौतिक मार्ग। इन दोनों ही मार्गों के विकास में योग साधना की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से योगदर्शन में राजयोग या

अष्टांगयोग का प्रमुख रूप से वर्णन प्राप्त होता है। राज से तात्पर्य राज वैभव व राजशाही मनोवृत्ति से है। इस राजशाही मनोवृत्ति में यदि अष्टांगयोग जुड़ जाता है, तब वह मानव मात्र के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त करता है। राजयोग का मुख्य लक्ष्य है कि मानव व्यक्तित्व के अन्दर सुशप्त शक्तियों को जागृत करना। योगदर्शन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में आत्मिक, आध्यात्मिक शक्ति सन्निहित होती है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर इस क्षमता को उपयोग में लाने की विधि की जानकारी हो तो हर व्यक्ति अपनी क्षमता को प्राप्त कर सकता है।

योगियों तथा मनीषियों ने व्यक्ति समूहों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की पहचान की है। हम अपने जीवन में विभिन्न गतिविधियों के अनुसार जैसे भावना, गतिशीलता, बुद्धि एवं सजगता के रूप में अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने इन

विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों को बौद्धिक, भावनात्मक और अन्तर्दृशी व्यक्तित्व के रूप में पहचाना है। व्यक्तित्व द्वारा अनुभूत की गई विशेषताएँ हमारी प्रकृति एवं मस्तिष्क के अनुकूल रूपान्तरित होते हैं, जो हमारे जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक तत्त्व की विशेषता के अभिव्यक्ति का आधार बनता हैं।

व्यक्तित्व का अर्थ:

हमारा चेतन एवं अचेतन दोनों अंश के मिलन से 'व्यक्तित्व' का गठन होता है, जो बाह्य परिवेश में अभिव्यक्त और प्रभावित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मानव का व्यक्तित्व उसकी क्षमताओं, स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा मान्यताओं का समूह है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न माना एवं जाना जाता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार मानव एक आध्यात्मिक प्राणी है। उसका व्यक्तित्व शरीर और मन के द्वारा ही निर्मित नहीं हुआ है, बल्कि इसमें आत्मा भी विद्यमान है। देह, इन्द्रियों एवं मन को एक साथ जोड़कर रखने वाली व्यष्टि आत्मा के पीछे परमात्मा, बौद्ध धर्म में निर्वाण, वेदान्त में ब्रह्म और सभी धर्मों के ईश्वर की सत्ता है। इस उच्चतम आध्यात्मिक चेतना में प्रतिष्ठित होकर बुद्ध, ईसा अथवा रामकृष्ण जैसे महापुरुष प्रलोभनों का उपहास कर सकते थे और उनके लिए मृत्यु भी अमरत्व का द्वार स्वरूप थी। मानसिक दृष्टि से प्रसीमित अथवा प्रतिबद्ध व्यक्ति अथवा सामान्य धार्मिक मानव के लिए यह मनःस्थिति सम्भव नहीं है। आन्शिक अनुभूति सम्पन्न व्यक्ति भी जिस समता एवं स्थैर्य को प्राप्त करता है वह मनोविज्ञान के द्वारा दी जाने वाली स्थिरता से काफी उच्च है।

व्यक्तित्व का गठन

व्यक्तित्व के गठन के रूप में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अंग हैं। सुनियोजित व्यक्तित्व में अहंकार व सीमित व्यक्तिगत चेतना बृहत परमात्म चेतना के साथ एकरूप हो जाती है। यह सुगठित चेतना शरीर और मन को सुसम्बद्ध, सुव्यवस्थित और स्वाभाविक रूप से परिचालित करती है, व्यक्तित्व के गठन का यही अर्थ है।

हमारी देह-हमारा यह भौतिक यन्त्र-चुस्त, तन्दुरुस्त रखना चाहिए। देह के प्रति हमारा दृष्टिकोण भिन्न होना चाहिए। यह विषयों के उपयोग का साधन नहीं है, न ही यह घृणित और तिरस्कार करने योग्य मल-मूत्र का भण्डार मात्र है। यह देह प्रमुखतया परमात्मा का मन्दिर है, जिसे स्वच्छ, सुन्दर एवं सबल बनाकर रखना है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि-

नृदेहेहमाद्यं सुलभं सुदर्शनं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

श्रीमद्भागवत् 11.20.17

अर्थात् गुरु रूपी कर्णधार एवं भगवत्कृपा रूपी अनुकूल वायु युक्त देह एक सुलभ व सुदर्शन नौका के समान है। जिससे व्यक्ति इसकी सहायता से संसार सागर को पार कर सकता है, परन्तु जो व्यक्ति पार नहीं करता वह आत्मघाती है। हमें द्रष्टा व दृश्य का विवेक होना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि हमारी भावनाएँ हमारे वास्तविक अहम् या द्रष्टा से भिन्न हैं। हम स्वयं को अपनी भावनाओं से पृथक करना सीख सकते हैं। उन्हें हमारी वास्तविक आत्मा से पृथक देखने में समर्थ होने पर हम उन पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं और जीवन की यथार्थताओं का साहसपूर्वक सामना कर मन और उसकी गतिविधियों को नियन्त्रित करने की क्षमता प्राप्त होती है।

फलस्वरूप योग आदिकाल से ही भारत भूमि में एक स्तम्भ के रूप में स्थापित है। प्राचीन समय से वर्तमान समय तक असंख्य योगी साधक, इस योग रूपी वृक्ष की पुनीत छाया में रहकर ही अपने जीवन में आत्मोत्कर्ष को प्राप्त कर मुक्त हुए हैं। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक इस योग विधा को किसी भी जाति, धर्म, वर्ग एवं सम्प्रदाय आदि के बंधन में बाधा नहीं जा सका और न ही इसे इन बंधनों में बाधा जा सकता है। योग ही वह तत्व है, जो प्राचीन व वर्तमानयोगीयो, चिन्तको, विचारको, साधको व दार्शनिको इत्यादि मुमुक्षु प्राणियों के ज्ञान पिपासा को शांत करता चला आ रहा है। इस योग रूपी नदी में स्नान कर अनेको साधक व भक्त भक्तिभाव से अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते आ रहे हैं।

यह योग प्रत्येक जाति, वर्ग एवं सम्प्रदाय विशेष के लिए समान रूप से लाभदायी एवं प्रेरणादायी है, इसी कारण से अनन्तकाल से वर्तमान समय तक इसकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। आज मानव जीवन में दैहिक, दैविक व भौतिक सुख की कामना से ग्रसित हो रहा है, जिसकारण वह अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक कार्य को सम्पादि कर अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए तत्पर रहता है। परन्तु वह अपने इस भावना व विचार के ठीक विपरीत यदि करता है, तो पाता है कि प्राचीन जन सामान्य भी इस सुख के लिए प्रयासरत तो अवश्य रहे परन्तु इन सभी से ऊपर भी एक तत्व और उनके जीवन का प्रमुख अंग था जो आत्मोत्कर्ष के नाम से जाना जाता है। अस्तु तब का मानव

अपने जीवन के परम उद्देश्य के प्रति सचेत व जागरूक था। उसके चिन्तन के मूल में सिर्फ एक ही तत्व विद्यमान था कि परमोत्कर्ष कैसे प्राप्त करे। इसके लिए तन्त्र, मन्त्र, पूजा-पाठ, जप, तप, योग, भक्ति, कर्म, ज्ञान, यज्ञ तान्त्रिक योग, वशिष्ठ योग, बौद्धयोग, जैनयोग व हठयोग इत्यादि साधना पद्धतियाँ भी रही हैं। इन सभी का आकार व प्रकार निश्चित ही अलग था परन्तु इनका उद्देश्य एक ही था, समग्र व्यक्तित्व का विकास कर मोक्ष की प्राप्ति करना।

महर्षि पतंजलि ने भी जीव के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए मन को एकाग्र करने के लिए उत्तम योग मार्ग प्रशस्त किया है। जिसके अन्तर्गत योग की विभिन्न साधनाएँ आती हैं। जिनके प्रयोग से इस चित्त की वृत्तियों का निरोध एवं अभाव हो जाता है। तब चित्त अपनी मूल स्थिति परम शान्त अवस्था को प्राप्त करके एकाग्र हो जाती है। इस एकाग्र चित्त रूपी दर्पण में अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। जब चित्त इतनी सक्षम हो कि आत्मा का साक्षात्कार होकर आत्मा का विलय परमात्मा में सम्पादित हो सके, योग की यही उच्चावस्था कैवल्य है। जिस प्रक्रिया व साधना का निरूपण महर्षि पतंजलि ने किया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारे जीवन में अनेक दुःख, कष्ट व अशान्ति के कारण जीवन में भोगविलासिता व वासनाओं के प्रतिरूप के कारण हम अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य से दूर होते जा रहे हैं, भौतिक संसार के सुख सुविधाओं ने जीवन के उद्देश्य को दिग्भ्रमित होकर जीवन की वास्तविकता से परे हो गया है। जो हमारे व्यक्तित्व विकास में बाधा की तरह है। परन्तु आधुनिक युग में भी पतंजलि उपदिष्ट योग मार्ग को मनुष्य अंगीकृत करता है तो वह निश्चित ही समाज व कार्यक्षेत्र में सामंजस्य को स्थापित करते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाकर जीवन की समस्याओं का निराकरण व उपचार करके ज्ञान को धरातल में उतारकर उसे अंगीकृत करे, तो निश्चित ही वह आधुनिक समय में उनके प्रभाव से बच सकता है।

योग प्राचीन काल से वर्तमान काल तक मानवीय धर्म, सदाचार व आध्यात्मिकता के रूप में प्रतिष्ठित है। वस्तुतः योग का जन्म तो अति प्राचीन काल में ही हो चुका था। जिसका प्रथम वक्ता हिरण्यगर्भ को ही माना जाता है। तदोपरान्त महर्षि पतंजलि ने योग को सूत्र में पिरोया जिसे योगसूत्र के नाम से जानते हैं। जिसमें 195 सूत्रों में समाहित मानव कल्याण व उत्थान के लिए महर्षि ने अष्टांग योग, अभ्यास-वैराग्य व क्रियायोग इत्यादि साधना पद्धतियों का संग्रह प्रदान किया है, जिसके अभ्यास व जीवन में धारण करने से व्यक्तित्व का समग्र विकास सम्भव हो सकता है।

महर्षि की साधना पद्धति तो निश्चित ही उत्तम कोटि की है, जिसमें कोई संशय नहीं है। इनके अतिरिक्त इन साधनाओं द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले अनेक योगी हुए हैं जैसे कि आधुनिक योगी स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, श्री अरविन्द इत्यादि हैं। इनका व्यक्तित्व व कृतित्व भी योगमय था परन्तु इनकी योग साधना पद्धति पतंजलि की साधना से अलग है। योग साधना की पद्धति चाहे जो भी हो परन्तु लक्ष्य तो एक ही होता है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसेकि भोजन का प्रकार चाहे जो भी हो लक्ष्य तो क्षुधा शान्त करना ही होता है। उसी प्रकार साधना चाहे जो भी हो उसका लक्ष्य एक ही है।

महर्षि पतंजलि की योग साधना:

महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन में योगसाधना विषयक अनुशासन को चार प्रमुख पाद समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद में विभक्त किया, जिनमें क्रमशः 51, 55, 55, 34 सूत्रों की व्याख्या है। महर्षि ने व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है। चित्त की वृत्तियों के निरोध हेतु उनके द्वारा साधक के स्तर के अनुसार दी गयी योग साधना की प्रमुख पद्धतियाँ निम्न प्रकार हैं:-

- **अभ्यास-वैराग्य:** उच्च पुरुष साधक के लिए
- **क्रियायोग:** मध्यम पुरुष साधक के लिए
- **अष्टांगयोग:** निम्न पुरुष साधक के लिए

महर्षि ने अष्टांगयोग की इस साधना को निम्न प्रवृत्ति के साधक के लिए बताया है अर्थात् जो साधक अभी नया है उसके लिए यह साधना है। महर्षि ने इसे व्यावहारिक व वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमें बहिरंग योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग योग के नाम से जाना जाता है। बहिरंग योग को साधने के पश्चात् अंतरंग योग की प्राप्ति संभव होती है। महर्षि पतंजलि ने ध्यान, धारणा, समाधि तीनों के एकीकरण को संयम के नाम से विभूति पाद में विभूषित किया है। यही महर्षि पतंजलि का संयम योग है। जीवन की सभी समस्याओं की गुन्थियों को सुलझाने के लिए अष्टांग योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

योगदर्शन में अष्टांगयोग को बृहद् रूप में समझाया गया है, जिसे श्रीमद्भगवद्गीता में राजयोग की संज्ञा दी गई है।

भगवान् श्री कृष्ण और पतंजलि ऋषि ने योग के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अष्टांग या राजयोग को प्रमुख मार्ग माना है:

समाधि में ध्यान और ध्याता का भान नहीं होता, केवल ध्येय रहता है।

क. **बहिरंगयोग:** बहिरंग के अन्तर्गत चार अवस्थाएँ आती हैं- यम, नियम, आसन और प्राणायाम। बहिरंग योग की सिद्धि से व्यक्ति की बाह्य व्यक्तित्व, व्यवहार और क्रिया परिष्कृत होती है। जिसके माध्यम से बाह्य प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करने में हम सक्षम होते हैं।

ख. **अन्तरंगयोग:** अन्तरंग की चार अवस्थाएँ हैं- प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि।

साधना की विभिन्न पद्धतियों में अष्टांगयोग सार्वभौमिक, सार्व देशित, सार्वकालिक, प्रामाणिक व वैज्ञानिक माना जाता है, जिसके आठ अंग निम्न हैं -

1. **यम:** का अर्थ है संयम। यह पाँच हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।
2. **नियम:** भी पाँच हैं- शौच-आन्तरिक और वाह्य शुद्धि, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान।
3. **आसन:** स्थिरता और सुखपूर्वक एक ही स्थिति में बहुत देर तक बैठने का नाम आसन है। ध्यान के लिए सिद्ध, पद्म, सुख, स्वास्तिक आदि अनेक आसन हैं।
4. **प्राणायाम:** श्वास-प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम अर्थात् श्वास, प्रश्वास की गति के सामान्य प्रवाह को रोककर विशेष गति में आने का नाम प्राणायाम है।
5. **प्रत्याहार:** इन्द्रियों को रूप, रस आदि अपने-अपने विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करने का नाम प्रत्याहार है।
6. **धारणा:** चित्त को नाभिचक्र, आज्ञाचक्र आदि किसी स्थान में स्थिर कर देना धारणा है।
7. **ध्यान:** किसी स्थान में ध्येय वस्तु का ज्ञान जब तेलधरावत् एक प्रवाह में संलग्न होता है, तब उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान में ध्यान, ध्येय और ध्याता का पृथक-पृथक भान होता है।
8. **समाधि:** जब ध्यान ही ध्येय के आकार में भासित हो और अपने स्वरूप को छोड़ दे तो वही समाधि है।

अन्तरयोग से व्यक्ति की आन्तरिक अभिव्यक्ति की सिद्धि होती है जिससे व्यक्ति अपने मन को नियन्त्रित करते हुए व्यक्तित्व का विकास करके परम लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। अन्तरंगयोग के अन्तर्गत अवलोकन, विश्लेषण, मनन, चिन्तन, ध्यान और उपलब्धि के साथ चेतना के अन्तिम अवस्था तक हम पहुँचकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। भारतीय दर्शन में योग आधारभूत तत्व है। योग सहित समस्त भारतीय दर्शन कि विचारधारा व चिन्तन का एक मात्र उद्देश्य दुःख निरोध के अनन्त विचारों पर केन्द्रित है। योगदर्शन चतुर्व्यह के निवारण के साथ इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण को अपना प्रयोजन स्वीकार किया है। योग हिरण्यगर्भ व पतंजलि द्वारा संकलित किया गया है। महर्षि ने योग की साधना पद्धतियों को उनके योग अधिकारियों द्वारा उपासित करने हेतु वर्णित किया है, जो योग का सरलतम स्वरूप है। इस हेतु अभ्यास - वैराग्य, क्रिया योग, अष्टांगयोग का दृष्टान्त भी सन्निहित है।

मानव का चित्त विभिन्न प्रकार के मलो से लिप्त होता है। इन मलो के अन्तर्गत ईर्ष्या, राग द्वेष, अभिनिवेश, परोपकार, अमर्श आदि सभी विक्षिप्त रूप में चित्त में व्याप्त रहता है। जिनके निवारण हेतु चित्त को निर्मल व शुद्ध बनाकर प्रसादन की आवश्यकता पड़ती है, जो व्यक्तित्व विकास के समग्र स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं:

1. **मैत्री भाव:** मैत्री भावनान्तरगत योगी साधक को चाहिए कि वह सुखी मनुष्य के प्रति मित्रता की भावना रखे। इस भावना अभ्यास से ईर्ष्या वृत्ति की निवृत्ति होती है। जब यह भावना अन्तर्मन में विकसित हो जाती है। तब साधक के हृदय में मित्रता का भाव उदीप्त होकर आन्तरिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है, उसे सांसारिक ऐश्वर्य नगण्य लगने लगते हैं।
2. **करुणा भाव:** जिसप्रकार मैत्री भावना से ईर्ष्या से निवृत्ति होती है। उसीप्रकार सांसारिक बाधाओं से व्यथित व दुःखी मनुष्यों पर करुणा की भावना का अभ्यास करने से परोपकर रूपी मल से निवृत्ति प्राप्त होती है।
3. **मुदिता भाव:** मुदिता भावना के अभ्यास मात्र से असूया नामक कालुष्य का निरोध होता है अतः

तपस्वी, ऋषि, मुनि सन्तों एवं अच्छे लोगो को देखकर मुदिता की भावना का अभ्यास करना चाहिए।

4. **उपेक्षा भाव:** उपेक्षा भावना अभ्यास में पापी, अपराधी, दुराचारी व्यक्ति से उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। उन व्यक्तियों पर क्रोध न करके बल्कि यह भाव रखे कि यह मानव स्वयं ही धर्म के मार्ग से पतित होकर अधर्म मार्ग में प्रवृत्त है। अतएव इससे विचलित न होकर ऐसे लोगो के प्रति उपेक्षा की भावना का अभ्यास करना चाहिए। जिससे कालुश्य का उपनयन होता है।

अतः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा इत्यादि के अभ्यास मात्र से चित्त में प्रसादन व प्रसन्नता की स्थिति उत्पन्न होती है। यह चित्त प्रसन्नता ही व्यक्तित्व विकास में सहायक है। इसी निमित्त ही पतंजलि का योग साधना व अभ्यास मार्ग अपने उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ आभाशित होता है।

उपसंहार:

समस्त संसार में प्रत्येक मानव का अपने जीवन में एक लक्ष्य होता है कि वह कृतिमान बने, जिससे समाज में उसे उसके व्यक्तिगत गुणों से जाना जाए। मानव के अन्दर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से कुछ विशेष गुण होते हैं। यही गुण उसे दूसरे मानव से अलग करते हैं। लेकिन कई कारणों से हर व्यक्ति अपने गुणों को प्रदर्शित नहीं कर पाता, जिससे वह समाज में वंचित रह जाता है। जैसे सोने के अन्दर चमक होना स्वभाविक गुण है, लेकिन जब तक सोने को तपाया नहीं जाता, तब तक उसमें चमक नहीं आती उसी प्रकार व्यक्ति योग के प्रत्येक पक्ष को अपने जीवन में अवतरित करके ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करता है। वर्तमान समय के ऋषि, मुनि, योग साधक का व्यक्तित्व प्रायः एक-दूसरे से अलग कर देता है। क्योंकि जितना हम योग के विभिन्न पक्षों का अपने जीवन में साधना करते हैं, हमारा आभामण्डल उतना ही तेज हो जाता है।

वर्तमान समय में भी ऐसे कई ऋषि-मुनि हुए जिन्होंने योग के किसी एक पक्ष को अपने जीवन में अवतरित कर लिया तो संसार उनका अनुयायी हो गया। जैसे महात्मा गाँधी ने केवल अहिंसा को अपने जीवन का मूल आधार बना लिया तो आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनके जन्म दिवस को अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्तमान समय में समस्त संसार को लगने लगा है कि संसार की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त व्यक्तिगत समस्या का एक मात्र निदान योग है। आज विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता

है। वैसे तो पूर्व में कई शोध हुए हैं लेकिन किसी एक पक्ष को लेकर जैसे महर्षि महेश योगी, भवातीत ध्यान के माध्यम से, परमहंस योगानन्द क्रियायोग, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती और जैन मुनि आचार्य महाप्रज्ञ जी ने योग निद्रा या जैन की भाषा में कायोत्सर्ग और प्रेक्षा ध्यान के माध्यम से, श्रीराम शर्मा आचार्य ने मन्त्र जप के द्वारा और वर्तमान योगी स्वामी राम देव, पद्म भूषण प्राप्त योगी अयंगर ने आसन के माध्यम से, पं. श्रीश्री रविशंकर जी ने आर्ट ऑफ लिविंग के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने की चेष्टा की है, जिसमें अपने-अपने काल में वे सब समय की माँग के दृष्टिकोण से अधिकांश सफल रहे।

वर्तमान एवं भविष्य में मानव कल्याण हेतु सहयोगी होगा, व्यक्ति के जीवन में अन्तरंग और बहिरंग स्तर पर उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने में यह सहायक सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का कथन है कि हम बदलेंगे, युग बदलेगा, हम सुधरेंगे, युग सुधरेगा। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है। अतः जो मनुष्य इसे अपने जीवन में अपनाएगा उसके जीवन में अवश्य ही परिवर्तन एवं बहुगुणी प्रतिभा का विकास होकर वह सुखी व समृद्ध बनेगा। पुनः हमारे राष्ट्र में राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे महापुरुष उत्पन्न होंगे एवं भारत विश्व गुरु बनेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. तीर्थ स्वामी ओमानन्द, पतंजलि योग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर, 2057
2. कल्याण, प्रकाशक, गोविंद भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. गौर मकरन्द मधुकर, शरीर विज्ञान और योगाभ्यास, प्रकाशक सौ. भारती गोर कांचन प्रकाशन कैवल्यधाम, लोनावाला
4. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
5. सरस्वती स्वामी निरन्जनानन्द, योग दर्शन प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
6. अरविन्द श्री, 2003, योग समन्वय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

7. रवीन्द्र, 1994, लाल कमल, श्री अरविन्द सोसाइटी, पांडिचेरी
8. यादव कैलास प्रसाद, 1997, जीवन और उपदेश, पश्चिमी टोला, भागलपुर-3, बिहार
9. आचार्य पं. श्री राम शर्मा, वांगमय, खण्ड-65, समाजिक नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
10. शिवानन्द श्री स्वामी, योगासन प्रकाशक दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द नगर टिहरी, गढ़वाल
11. विज्ञानानन्द स्वामी, सरस्वती हठयोग विधा, प्रकाशक योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती ऋषिकेश
12. विवेकानन्द स्वामी, ध्यान, प्रकाशक रामकृष्ण मठ नागपुर
13. श्रीवास्तव सुरेन्द्र चन्द्र, पतंजलि योगदर्शनम् प्रकाशक, चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी
14. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, योग प्रदीप-5, प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
15. सरस्वती स्वामी निरञ्जनानन्द, धारणा दर्शन प्रकाशक, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
16. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, मुक्ति के चार सोपान, प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर, बिहार
17. स्वामी परमहन्स, अनन्त भारती, योग और स्वास्थ्य, प्रकाशक स्वामी केशवानन्द योग संस्थान, दिल्ली
18. आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, वांगमय, व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तीय साधनाएँ, प्रकाशक अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
19. प्रज्ञा समणी श्रेयस, जीवन विज्ञान का आध्यात्मिक एवं मनोविज्ञानिक आधार प्रकाशक, जैन विश्वभारती लाङ्गन, राजस्थान

पत्रिका

1. हेल्थ साइकोलॉजी-संपादक-डॉ० दीनानाथ राय, कुण्डलिनी (त्रैमासिक पत्रिका) योग रिसर्च इंस्टीट्यूट, लखनऊ, 3090

2. योगविद्या-प्रकाशक-बिहार योग विद्यालय गंगा (द्विमासिक पत्रिका), दर्शन किला, मंगेर, बिहार, मार्च-1979
3. स्वास्थ्य एवं पर्यावरण-संपादक-सुरेन्द्रपाठक, प्रकाशक-स्वास्थ्य प्रतिष्ठान न्यास, संस्करण-1995

Corresponding Author

Ram Prakash*

Research Scholar, Department of Yoga,
Himalayan Garhwal University, Uttarakhand